* ओ३म् *

नित्यकर्मविधिः

अर्थात्

नित्यकर्मों का विधान

प्रकाशक

आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर

मुद्रक

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग प्रेस, अजमेर

आर्य्यवत्सर १,९६,०८,५३,०७२

दसमावृति ५,००० } वि० संवत् २०२६ { मूल्य १० पैसे

भूमिका

जगत् के प्राचीन व अर्वाचीन तत्त्ववेत्ताओं ने अनुभव करके यही निश्चित किया है कि इस संसार में जो मनुष्य वा जाति नियम पूर्वक चलती है वही शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक सुख भोगने की भागी होती है। इतिहासों में यह प्रसिद्ध है कि संसार में जितने महापुरुष हुए हैं उनमें अनेक गुणों के साथ नियम पूर्वक रहने का मुख्य गुण भी रहा है। इससे सिद्ध होता है कि नियम पूर्वक रहना मनुष्य-जीवन का मूल है। इस कारण हम सर्वसाधारण के हितार्थ "नित्यकर्मविधि" अर्थात् नित्यकर्त्तव्य कर्म जो ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव और अतिथियज्ञ हैं, इन पाँच कर्मों का प्रकार संक्षेप से लिखते हैं।

मनुष्य को चाहिये कि सूर्य निकलने से तीन घड़ी प्रथम उठे, क्योंकि कहा है कि भोर से प्रथम उठना मनुष्य को आरोग्य, धनवान् और बुद्धिमान् बनाता है। उसके पश्चात् नगर से बाहर जंगल में शौच जाय। यदि ऐसे नगर में रहने वाला हो जहाँ जंगल में जाना सम्भव न हो तो पाखाना में शौच जाय, शौच होकर मिट्टी और जल से दुर्गन्धवृत्तिपर्यन्त अच्छी तरह हाथों को धोये, फिर व्यायाम (कसरत) करे, अर्थात् कम-से कम २० दण्ड, २० बैठकें, ५० हाथ जोड़ी के हिलावे या अन्य प्रकार की कसरत, जो कर सके, करे। रात में सोने से बदन सुस्त हो जाता है, उसकी निवृत्ति के लिये जो व्यायाम नहीं करता उसके शरीर में नाना प्रकार के रोग आदि होते रहते हैं। व्यायाम करने से रोग और आलस्य आदि की निवृत्ति से बुद्धि निर्मल हो के ज्ञान प्रकाशित होता है, इसलिये अवश्य व्यायाम करे। फिर किसी शुद्ध वृक्ष की दातोन या किसी प्रकार के मंजन से दांतों को साफ करे, ताकि मुख से दुर्गन्ध न आवे और दांत भी दृढ़ हो जावें, बुढ़ापे में दुःख न दें। फिर नदी, तालाब व कूप आदि के शुद्ध जल से स्नान करे। फिर एकान्त स्थान में शुद्ध आसन पर बैठकर गायत्री मन्त्र को पढ़ता हुआ शिखा बांधे जिससे इधर उधर बाल बिखर कर चित्त को विक्षिप्त न करें। फिर आचमन प्राणायामादि विधिपूर्वक सूर्य निकलने के पूर्व करके सन्ध्या करे, सन्ध्या करने के पश्चात् अग्निहोत्र आदि नित्यकर्मों को यथालिखित करे।

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ ब्रह्मयज्ञः ॥

अथाचमनमन्त्रः ॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६ । मं० १२ ॥

अर्थ—सब का प्रकाशक और सर्वव्यापक ईश्वर मनोवांछित और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के लिये हमको कल्याणकारी हो और हमारे ऊपर सुख की वृष्टि करे ॥ इस मंत्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आचमन करे ।

अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः ॥

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओंशिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे ॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरी वाणी और जिह्वा शुभ बोलने वाली हो, मेरे दोनों नेत्र पवित्र भाव से देख, मेरे दोनों कान सदा शुभ मंगलाचार को सुनें, मेरी नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर सब अपना २ शुभ कार्य करें और मैं दोनों भुजाओं और हाथों से दुष्टों की ताड़ना और श्रेष्ठों का पालन करता हुआ यश और बल को प्राप्त होऊं ॥ इन वाक्यों को बोलता हुआ इन्द्रिय-स्पर्श करे इस प्रयोजन से कि परमेश्वर इन्द्रियों को बलिष्ठ करे।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः ॥

ओम् भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

अर्थ—प्राणों का प्राण परमात्मा हमारे सब पूर्वोक्त अंगों और प्रत्यंगों को पवित्र करे अर्थात् दुष्ट कर्मों से हटाकर शुभ कर्मों में लगावे ॥

ओम्, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्, ये नाम ब्रह्म के हैं। इनको पढ़ता हुआ अर्थविचारपूर्वक हाथ में जल लेकर मार्जन करे अर्थात् अङ्गों पर जल छिड़के। आलस न हो तो न करे।

अथ प्राणायाममन्त्राः ॥

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ॥ तै० प्र० १० । अनु० २७ ॥

इस मन्त्र से प्राणायाम करे अर्थात् भीतर के वायु को नासिका पुट से बाहर निकालकर यथाशक्ति वहीं रोके, फिर धीरे धीरे ग्रहण करके और रोक करके वैसे ही फिर बाहर निकाले और रोके। इस प्रकार कम-से-कम तीन बार करे। जितने समय तक श्वास रोके उतने समय तक इस मन्त्र को अर्थ विचार-पूर्वक मन में जपता रहे। फिर नीचे लिखे अघमर्षण मन्त्र द्वारा स्तुति करेः—

अथाघमर्षणमन्त्राः ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजयत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥
ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥
ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

ऋ० अ० ८ । अ० ८ । व० ४८ ॥

अर्थ—मैं उस पूर्ण परमात्मा का ध्यान करता हूँ कि जिस अनन्तज्ञानमय परमेश्वर के सामर्थ्य से सब विद्या का भण्डार वेद शास्त्र और त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्, रज, तम कारणरूप प्रकृति कार्य्यरूप होकर पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुए। उसी ईश्वर

के सामर्थ्य से महारात्रि जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी तक रहा करती सो भी उत्पन्न होती है। उसी परमात्मा से पृथ्वी और मेघमंडल और महासमुद्र की उत्पत्ति हुई। उसके पश्चात् संवत्सर भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है। सब को वश में करने वाले ईश्वर ने सहज स्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षणादि को पूर्ववत् रचा है। सूर्य और चन्द्रमा को सब जगत् के धारण और पोषण करने वाले ने पूर्व कल्प के तुल्य रचा। और सूर्य आदि लोकों का प्रकाश पृथ्वी और सूर्यलोक के बीच में जो लोक हैं तथा जितने आकाश के बीच में लोक हैं उनको भी ईश्वर ने पूर्ववत् रचा है।

तात्पर्य यह है कि वेद से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जो यह जगत् है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है। और ईश्वर व्यापक हो के अन्तर्यामी रूप से सब के पाप पुण्य को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सबको यथावत् फल दे रहा है, ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन, वचन, कर्म से पापकर्मों को कभी न करें॥

अघमर्षण के पश्चात् "शन्नो देवी०" इस मन्त्र से फिर तीन आचमन करे और गायत्री मन्त्र के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर का चिन्तन करे।

अथ मनसापरिक्रमामन्त्राः॥

ओम् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥१॥

अर्थ—पूर्व दिशा में जो अग्नि ज्ञानस्वरूप अधिपति व जगत् का स्वामी बन्धनरहित रक्षा करने वाला जिसके बाण आदित्य के किरण हैं, उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर को हम लोग बारम्बार वन्दना करते हैं, जो ईश्वर के गुण और उसके रचे

पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं और पापियों को बाण के समान पीड़ा देने वाले हैं, उनको हम वन्दना करते हैं इसलिए कि जो प्राणी लोग अज्ञान से धार्मिक पुरुष का तथा पापी पुरुष का द्वेष करते हैं उन सबकी बुराई वह बाणरूपी किरण मुख के बीच में दग्ध कर देते हैं कि जिससे हम लोग किसी से वैर न करें और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे, किंतु हम सब लोग मित्रभाव से परस्पर बर्त्तें।१।

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

अर्थ—दक्षिण दिशा का अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण ऐश्वर्य वाला है, जो पदार्थ कीट पतंग वृश्चिक आदि तिर्यक् कहाते हैं, उनकी पंक्तियों से रक्षा करने वाला एक परमेश्वर है, जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं। (तेभ्यो नमो०) का अर्थ पूर्ववत्।२।

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः॥ तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

अर्थ—जो पश्चिम दिशा अर्थात् अपना पृष्ठ भाग है उसमें वरुण जो सबसे उत्तम सबका राजा परमेश्वर है जो बड़े अजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करने वाला है, जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के समान श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को ताड़ने के निमित्त हैं। (तेभ्यो नमो०) का अर्थ पूर्ववत्॥३॥

ओम् उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

अर्थ—उत्तर दिशा में सोम अर्थात् शान्त्यादि गुणों से आनन्द कराने वाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये, जो

अजन्मा रक्षा करने वाला और जिसके बाण विद्युत् हैं। (तेभ्यो नमो०) का अर्थ पूर्ववत् ॥ ४ ॥

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

अर्थ—ध्रुव दिशा जो अपने नीचे की ओर है, उस में विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना चाहिये, जिसके हरित रङ्गवाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं। जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं, उनसे अधोदिशा में हमारी रक्षा करें। (तेभ्यो नमो०) का अर्थ पूर्ववत् ॥ ५ ॥

ओम् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

अथर्व० कां० ३। अ० ६। व० २७। मं० १—६॥

अर्थ—जो उर्ध्व अर्थात् ऊपर की दिशा में बृहस्पति जो वाणी का स्वामी परमेश्वर है, उसको अपना रक्षक जानें। उसके बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं उनसे हमारी रक्षा करे। (तेभ्यो नमो०) का अर्थ पूर्ववत् ॥ ६ ॥

अथोपस्थानमन्त्राः ॥

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥ य० अ० ३५। मं० १४ ॥

अर्थ—सब अन्धकार से पृथक् प्रकाशस्वरूप, प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान, देवों का भी देव अर्थात् प्रकाश करने वालों का भी प्रकाशक चराचर के आत्मा ज्ञानस्वरूप और सबसे उत्तम आपको प्राप्त होने के लिये प्रार्थना करते हैं। आप कृपा करके शीघ्र प्राप्त हों क्योंकि आप ही हमारे रक्षक हैं ॥ १ ॥

ओम् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २॥ य० अ० ३३। मं० २१॥

अर्थ—जिससे ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है, जो सब जगत् का उत्पादक है, सो परमेश्वर जातवेद नाम से प्रसिद्ध है, जो सब देवों का देव और सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है उस परमात्मा की विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं, जिसको (केतवः) वेद की श्रुति, जगत् के पृथक् पृथक् रचनादि नियामक गुण जनाते और प्राप्त कराते हैं॥ २॥

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषुश्च स्वाहा॥ ३॥ य० अ० ७। मं० ४२॥

अर्थ—प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है उसको सूर्य कहते हैं, जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बना के धारण और रक्षण करने वाला है, जो मित्र अर्थात् रागद्वेषरहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षु प्रकाश करने वाला है, सब उत्तम कर्मों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है, जो अद्भुत स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है, जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परमोत्तम बल है वह परमेश्वर हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे॥ ३॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ ४॥ य० अ० ३६। मं० २४॥

अर्थ—जो ब्रह्म सब का द्रष्टा धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक तथा सृष्टि के पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्यस्वरूप से

वर्त्तमान रहता है और सब जगत् का करने वाला है उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्यन्त देखें, जीवें, सुनें, उसी ब्रह्म का उपदेश करें और उसकी कृपा से किसी के अधीन न हों। उसी परमेश्वर की आज्ञा-पालन और कृपा से सौ वर्षों के उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवे, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें अर्थात् आरोग्य शरीर, दृढ़ेन्द्रिय, शुद्ध मन और आनन्द-सहित हमारा आत्मा सदा रहे ॥ ४ ॥

अथ गुरुमन्त्रः ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० अ० ३६ । मं० ३ ॥

अर्थ—(ओ३म्) यह परमेश्वर का मुख्य नाम है। (भूः) जो सम्पूर्ण देहधारियों का प्राणदाता तथा प्राणों से भी प्रिय है। (भुवः) जो धर्मात्माओं के क्लेशों को निवारण कर देता है। (स्वः) जो सुखस्वरूप है, उस परब्रह्म परमात्मा को जो सर्व जगत् का उत्पादक और पालक है जो ग्रहण करने योग्य है जो तेजःस्वरूप है हम उस देव जगदीश्वर का ध्यान करते हैं। वही परमेश्वर हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ कामों में प्रेरित करे और आकर्षित करे।

तात्पर्य—जिस परब्रह्म परमात्मा का मुख्य सर्वोत्तम नाम ओंकार है, जो सम्पूर्ण जन्तुओं का प्राणदाता तथा प्राणों से भी प्रिय है, जो सज्जनों के दुःखों को दूर करके नित्यानन्द में रखता है, जो सर्वज्ञ सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् है, जो अनन्त ब्रह्माण्ड का तथा उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण वस्तुओं का आदिकारण, पालक तथा लयकारक है, जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य है उस सच्चिदानन्दस्वरूप, निरंजन, निराकार, निर्विकार, अधमोद्धारक, धर्मार्थ-काममोक्षप्रद तेज का हम ध्यान करते हैं कि वह हमारी बुद्धियों को दुराचारों से छुड़ाकर सदाचारों में स्थिर करे।

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करे, कि हे ईश्वर दयानिधे आपकी

कृपा से जो जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपके अर्पण हैं, जिससे हम लोग आप को प्राप्त हो के, धर्म—जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ—जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम—जो धर्म अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष—जो सब दुखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो।

नमस्कार मन्त्रः ॥

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ य० अ० १६। मं० ४१ ॥

अर्थ—जो सुखस्वरूप, संसार के उत्तम सुखों का देने वाला, कल्याण का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कर्मों को ही करनेवाला, अपने भक्तों को सुख का देने वाला और धर्म कामों में युक्त करने वाला, अत्यन्त मंगलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्षसुख देने हारा है, उसको हमारा बारम्बार प्रणाम हो ॥

इति संध्योपासनविधिः ॥

द्वितीय देवयज्ञ (अग्निहोत्र) ॥

सन्ध्योपासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है। उसके लिये किसी धातु अथवा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये जो १६ अंगुल चौड़ा और १६ अंगुल गहरा हो और उसका तला ४ अंगुल का लम्बा चौड़ा रहे। एक चमसा १६ अंगुल का लम्बा और उसके अग्रभाग में अंगूठा की यव रेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा आचमनी के समान हो, सो भी किसी धातु वा लकड़ी का हो। एक आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र सोना चांदी वा लकड़ी का बनवा लेवे और एक जल का पात्र और एक चिमटा भी हो और पलाशादि की लकड़ी समिधाओं के लिये हों। घृत को गर्म कर छान ले और एक सेर घी में १ रत्ती कस्तूरी और १

मासा केसर मिला के एक पात्र में रख छोड़े। जब अग्निहोत्र करे तब शुद्ध स्थान में बैठ के पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे। पुनः समिधाओं को कुण्ड में रख कर इस नीचे लिखे मंत्र से वेदी के बीच में अग्नि को रक्खे :—

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ य० अ० ३। मं० ५॥

वेदी में अग्नि प्रविष्ट करके नीचे लिखे मंत्रों से अग्नि में एक एक समिधा रक्खे—

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे—इदं न मम ॥ आश्व० १। १०, १२॥ (इस मन्त्र से एक)

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये-इदं न मम। (इससे और) ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदं न मम। (इससे अर्थात् दोनों से द्वितीय) ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदं न मम॥ (इससे तृतीय)

नीचे लिखे मन्त्र से पांच घृत की आहुति देवें—

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदं न मम॥

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि में अंजलि में जल ले के चारों ओर छिड़के, इन

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व (इससे पूर्व)

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व (इससे पश्चिम)

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व (इससे उत्तर) मन्त्रों को पढ़ता हुआ :—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ य० अ० ३० । मं० १ ॥

इस मंत्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़के। इसके पश्चात् स्रुवा भर पुनः अंगुष्ठ मध्यमा और अनामिका से उसको पकड़ के—

ओम् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये-इदं न मम ॥

इससे वेदी के उत्तर भाग अग्नि में।

ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय-इदं न मम ॥

इससे वेदी के दक्षिण भाग अग्नि में।

ओं प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये-इदं न मम ॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय-इदं न मम ॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति दे के नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्रातःकाल और सायंकाल अग्निहोत्र करे।

प्रातःकाल होम के मन्त्र ॥

ओं सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ।

ओं सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।

ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्योज्योतिः स्वाहा ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥

सायंकाल होम के मन्त्र ॥

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥

(अग्निर्ज्योति:०) इसी मन्त्र को फिर मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।। य० अ० ३ । मं० ९ । १० ॥

अर्थ—(सूर्यो ज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्य्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है, उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं। (सूर्य्यो व०) जो सूर्य्य परमेश्वर हमको सब विद्याओं को देनेवाला और हम लोगों में उनका प्रचार कराने वाला है, उसी के अनुग्रह से हम लोग अग्निहोत्र करते हैं। (ज्योतिः सूर्य्यः) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करनेवाला सूर्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं। (सजूर्देवेन) जो परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्यापक वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सबके अंग अंग में व्यापक है, वह अग्नि परमेश्वर हम को विदित हो, उसके अर्थ हम होम करते हैं। (अग्निर्ज्योति०) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिस्वरूप है, उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं और उसका रचा हुआ जो यह भौतिक अग्नि है जिसमें द्रव्य डालते हैं सो इसलिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु बुद्धि के साथ मिला के उनको शुद्ध कर दे, जिससे सब संसार सुखी हो के पुरुषार्थी हो। (अग्निर्वर्चो०) अग्नि जो परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याओं का देने वाला तथा भौतिक अग्नि आरोग्य बुद्धि बढ़ाने का हेतु है, इसलिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं। (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक वायु और रात्रि के साथ पूर्ण सब पर

प्रीति करनेवाला और सबके अंग २ में व्याप्त है वह अग्नि परमेश्वर हम को प्राप्त हो, इस प्रयोजन के लिये हम होम करते हैं।

नीचे लिखे प्रातः और सायं दोनों काल में होम के ये मंत्र हैं॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय-इदं न मम॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय-इदं न मम॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय-इदं न मम॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदं न मम॥
ओं आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥
ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा॥

इति अग्निहोत्रविधिः॥

तृतीय पितृयज्ञ॥

अग्निहोत्र के पश्चात् पितृयज्ञ है। पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता पिता आचार्य गुरु उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत् सेवा करना पितृयज्ञ कहाता है। इति पितृयज्ञः॥

चतुर्थ भूतयज्ञ बलिवैश्वदेव॥

निम्नलिखित दश मंत्रों से घृत मिश्रित क्षार और लवणान्न को छोड़ के पाकशाला में जो कुछ भोजन बना हो उसी की आहुति करे।

ओं अग्नये स्वाहा। ओं सोमाय स्वाहा। ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं धन्वन्तरये स्वाहा। ओं कुह्वै स्वाहा। ओमनुमत्यै स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा। ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ओं स्विष्टकृते स्वाहा॥

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करे। एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग रखना, यदि भाग रखने के काल में कोई अतिथि आ जाय तो उसी को दे देना अथवा अग्नि में डालना चाहिये।

भाग रखने के मन्त्र॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। (इससे पूर्व), ओं सानुगाय यमाय नमः। (इससे दक्षिण), ओं सानुगाय वरुणाय नमः।

(इससे पश्चिम), ओं सानुगाय सोमाय नमः । (इससे उत्तर), ओं मरुद्भ्यो नमः । (इससे द्वार), ओम् अद्भ्यो नमः । (इससे जल), ओं वनस्पतिभ्यो नमः । (इससे मुसलोलूखल), ओं श्रियै नमः । (इससे ईशान), ओं भद्रकाल्यै नमः । (इससे नैर्ऋत्य), ओं ब्रह्मवर्चसे नमः । ओं वास्तुपतये नमः । (इनसे मध्य), ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । (इनसे ऊपर), ओं सर्वात्मभूतये नमः (इससे पृष्ठ), ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । (इससे दक्षिण) । तत्पश्चात् निम्नलिखित छः भाग और घी के साथ लवणान्न को ले के रक्खे ।

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् । वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ मनु० अ० ३ । श्लो० १२ ॥

अर्थ—कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग पृथ्वी में धरे और छः भाग जिस जिस नाम के हों उस उस को दे देवे ॥ इति बलिवैश्वदेवविधिः ॥

पंचम अतिथि यज्ञ ॥

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥२॥ अर्थ० कां० १५ । अनु० २ । व० ११ । मं० १ ।२॥

जब पूर्ण विद्वान् परोपकारी सत्योपदेशक, गृहस्थों के घर आवें तब गृहस्थ लोग स्वयं समीप जाकर उक्त विद्वान् को प्रणाम आदि करके उत्तम आसन पर बैठाकर पूछें कि कल के दिन कहां आपने निवास किया था । हे ब्रह्मन् ! जलादि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हो ग्रहण कीजिये और हम लोगों को अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिये ।

जो धार्मिक परोपकारी सत्योपदेशक पक्षपात रहित शान्त सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना है, वह अतिथियज्ञ कहाता है, उसको नित्य प्रति किया करे । इन पंचमहायज्ञों को स्त्री और पुरुष दोनों प्रति दिन किया करें । इति नित्यकर्मविधिः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।